THE ECONOMIC TIMES

Date: 18-07-17

Antarctica's Larsen C Ice Shelf

A calf that points to earth's vulnerability

ET Editorials

A trillion-tonne piece of the Larsen C has broken off and a piece of ice 5,800 sq km, four times as large as Delhi, now drifts in the sea. It brings to a close the end of decades-long splintering first spotted by satellites in the 1960s and remained small until 2014.

Scientists deny there is any clear, global-warming link between rising levels of carbon dioxide and the calving of the ice shelf. However, human activity may have contributed to its calving nonetheless. Unlike the Arctic ice melt, the calving of the ice shelf will not immediately contribute to rising sea levels.

However, the breaking of 40 trillion cu ft of ice from the Antarctic ice shelf in a manner that changes the geography of the South Pole region should give added attention to climate change, the Paris accord to combat it and US withdrawal from it, and President Donald Trump's second thoughts on the subject. It should also give added impetus to efforts by governments, cities and action groups to reduce their carbon footprint. In time to come, scientists studying the events are likely to be able to pinpoint the extent to which human activity induced or accelerated the cracking of the ice shelf.

The Larsen A and Larsen B ice shelves have recorded significant calving events since 2000. What is clear is that governments, state and local authorities, communities and businesses need to manage and eventually reduce their ecological and carbon footprint.The time to act is now. Action cannot be limited to clean energy choices, it must encompass the more efficient use of resources, the willingness to adopt an approach that emphasises reducing, reusing and recycling. There is no Planet B for those who are not Elon Musk, and every effort must be made to keep the earth in balance.

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 17-07-17

Way of the river

Causes for annual floods in Assam are well-known. It's now time to put lessons from research on the Brahmaputra into practice

Editorial

In April, Assam's chief secretary reviewed the state's preparedness to carry out relief and rescue operations during floods. Emergency management exercises were conducted at the ward and village levels. But two months later, as the Brahmaputra went into spate, the state administration was caught unawares — again. Floods in the state have claimed more than 50 lives, nearly 18 lakh have been affected by the deluge and most of the Kaziranga National Park is submerged. Nearly 2 lakh hectares of the state's crop area is affected.

Floods in Assam are as regular as the monsoon itself. According to the National Flood Commission of India, about 40 per cent of the state's area is flood-prone. But human-made factors have compounded this annual problem. This year, the Ranganadi, Dikting and Singra — tributaries of the Brahmaputra — swelled up after the North East Electric Power Corporation opened up its dams to release water from the Ranganadi Hydro-electric Project in Arunachal Pradesh's Lower Subansiri district.

Floods caused by the release of water in the Brahmaputra's upstream have become a common monsoon scourge in Assam, since the past seven years. Like most river-related problems, the solution lies in dialogue between upper and lower riparian states — Arunachal Pradesh and Assam, in this case. Assam's policymakers are aware of the problems emanating from the Brahmaputra's upstream. "The floods are caused by the runoff of heavy rainfall during the monsoon and high sediment loads from upper watersheds that are geologically unstable and degraded because of deforestation and changing land use," notes a report issued last year by the Assam State Disaster Management Authority. However, authorities in Assam and Arunachal Pradesh have not put their heads together to resolve the issue.Even within Assam, agencies which should be working together to keep the floods in check, have operated along different lines. While the state's disaster management authority has correctly identified the geological instability caused by deforestation, Assam's water resource department continues to harp on the discredited system of embankments.

The state's embankments — walls to hold river water from spilling — were built according to recommendations made in 1954 by the Rashtriya Barh Ayog. Floods in the past six decades have shown that when the Brahmaputra swells up during the monsoons, it puts pressure on the embankments, causing breaches. This year, eight embankments in the state have been damaged. Moreover, academic and government studies have shown that the Brahmaputra changes course frequently and it's virtually impossible to contain the river within the embankments. Given that the Brahmaputra is among the better studied of the country's rivers, the annual havoc it causes should have been contained by now. It is time research is put to practice.

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 17-07-17

साफ नीयत से होगी गंगा की सफाई

दिनेश मिश्र, जल विशेषज्ञ (ये लेखक के अपने विचार हैं)

गंगा की सफाई के प्रयास राजीव गांधी के **प्रधानमंत्रित्व** काल यानी पिछले करीब 30 वर्षों से चल रहे हैं। तब गंगा ऐक्शन प्लान-1 और 2 के अधीन यह काम हुआ था। 2014 में नई सरकार आने के बाद 'नमामि गंगे' नाम से 20,000 करोड़ रुपयों की लागत वाली एक महत्वाकांक्षी योजना के अंतर्गत इस कार्यक्रम को आगे बढ़ाया गया। यह राशि 2015 से 2020 के बीच खर्च किए जाने की योजना है, जबकि मार्च 2017 तक इस पर मात्र 7304.64 करोड़ रुपये ही खर्च हो पाए। अरबों रुपये के निवेश और 'कठिन परिश्रम' के बावजूद 2,500 किलोमीटर लंबी गंगा आज भी शहरों और कस्बों का प्रतिदिन 480 करोड़ लीटर सीवेज और 760 चिह्नित कारखानों से निकलने वाला औद्योगिक कचरा ढो रही है। गंगा में कचरे का जिक्र आते ही आंखों के सामने सबसे पहले कानपुर का जाजमऊ कस्बा घूम जाता है, जहां 450 के करीब चर्म-शोधन कारखाने हैं। इन्हें यहां से हटाकर किसी अन्य सुविधाजनक स्थान पर ले जाने की बात हुई थी, मगर उत्तर **प्रदेश** सरकार आज तक ऐसे स्थान की तलाश ही कर रही है, जहां इन कारखानों को ले जाया जाए। अब तक इनमें से महज14 कारखाने ही दूसरी **जगहों** पर ले जाए गए हैं।

अत्यधिक देरी के कारण ही गंगा सफाई अभियान का यह मामला जनहित याचिका के जरिये उच्चतम **न्यायालय** से होता हुआ राष्ट्रीय हरित अधिकरण यानी एनजीटी तक पहुंचा। एनजीटी ने **संज्ञान** लिया कि इतनी बड़ी राशि खर्च हो जाने के बावजूद **केंद्र** सरकार, उत्तर प्रदेश सरकार और कई स्थानीय निकायों के प्रयासों का गंगा के **स्वरूप** में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई दिया है और पर्यावरण के लिहाज से यह मसला अब भी गंभीर बना हुआ है। 13 जुलाई को दिए गए 543 पन्नों के एक फैसले में एनजीटी ने गंगा के किनारे से 500 मीटर के अंदर हरिद्वार से लेकर उन्नाव तक कहीं भी कचरा फेंकने पर रोक लगा दी और इस आदेश की अवमानना करने पर 50,000 रुपये तक दंड की सिफारिश की है। अधिकरण ने उत्तर प्रदेश सरकार को भी निर्देश **दिया** है कि वह छह हफ्तों के अंदर चर्म-शोधक कारखानों को वहां से हटाकर किसी दूसरे सुरक्षित स्थान पर ले जाए, ताकि इन कारखानों से निकलने वाला दूषित जल नदी में न जाने पाए। यह आदेश उत्तर प्रदेश के कानपुर, बंथरा और उन्नाव स्थित प्रदूषणकारी उद्योगों को ध्यान **में** रखकर दिया गया है।

साथ ही उत्तराखंड सरकार से भी कहा गया है कि वह गंगा और उसकी सहायक छोटी नदियों के किनारे होने वाले धार्मिक कार्यक्रमों के लिए नियमावली बनाकर नदी को दूषित करने वाले **आयोजनों** पर रोक लगाए। एनजीटी नदी के किनारे से 100 मीटर के अंदर किसी प्रकार के निर्माण को रोकने के पक्ष में भी है। सभी संबद्ध **संस्थाओं** को सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट और प्रदूषणरोधी संयंत्र लगाने का काम चार महीनों के अंदर शुरू करने का आदेश भी दिया गया है, ताकि दो **वर्षों** के अंदर उन्हें पूरा किया जा सके। अपने तमाम निर्देशों पर अमल सुनिश्चित कराने के लिए अधिकरण ने एक विशेष समिति बनाने का **प्रस्ताव** भी किया है।वैसे अधिकरण के पीठ ने अधिकारियों के सामने बीती छह फरवरी को भी अपनी नाराजगी जाहिर की थी और उस समय तक की उपलब्धियों को जनता की गाढ़ी कमाई की बर्बादी कहा था। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का नाम लेते हुए और दूसरी तमाम **संस्थाओं** को इंगित करते हुए पीठ का कहना था कि किसी ने अपना काम नहीं किया। अगर किया होता, तो उन्हें यहां आने की जरूरत ही नहीं पड़ती। सभी लोग कहते हैं कि गंगा पर बहुत काम हुआ है, मगर सच तो यह है कि वह एक भी बूंद साफ नहीं हुई। इस योजना की एक समीक्षा केंद्र सरकार ने छह अप्रैल को की थी, और उसके परिणाम **बहुत** ज्यादा उत्साहवर्द्धक नहीं थे। समीक्षा के निष्कर्षों के अनुसार योजना राशि का अधिकांश भाग बिना खर्च हुए पड़ा था और इसके 2018 तक पूरा होने की संभावना बहुत

क्षीण थी। निर्धारित लक्ष्य हासिल करने के लिए **अप्रैल** तक आधे सीवेज प्लांट चालू हो जाने चाहिए थे, लेकिन तब तक 118 शहरों व कस्बों का तीन चौथाई अशोधित मल सीधे गंगा में जा रहा था। गंगा को स्वच्छ रखने के लिए सरकार ने जो 1,200 करोड़ रुपये निर्धारित किए थे, उसमें से जनवरी, 2017 तक सिर्फ 133 करोड़ रुपये ही **खर्च** हुए थे। नदी में जो 480 करोड़ लीटर सीवेज प्रतिदिन सीधे गिर रहा था, उसके शोधन के लिए अर्जित क्षमता मात्र 102 करोड़ लीटर **प्रतिदिन** थी। नदी के किनारे के 180 घाटों का आधुनिकीकरण होना था, जिसमें से केवल 50 पर ही काम शुरू हुआ था। 118 शवदाह गृहों में से भी **सिर्फ** 15 में सुधार-कार्य शुरू हुआ, जबकि 31 अन्य शवदाह **गृहों** का काम शुरू करने के लिए सिर्फ औपचारिकताएं पूरी हो सकी थीं।

स्पष्ट है कि यह पूरा अभियान समय से काफी पीछे चल रहा है, और शायद इसी कारण से राष्ट्रीय हरित अधिकरण को इतनी तल्ख टिप्पणी करनी पड़ी। यहीं से अधिकारियों और संबद्ध **संस्थाओं** की गैर-जवाबदारी का अध्याय भी शुरू होता है। इस **प्रकरण** में यह भी साफ हुआ कि जिस काम को एक राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में देखा जाना चाहिए था, वह उनकी प्राथमिकता में किस पायदान पर है? गंगा के साथ जनमानस की आस्था जुड़ी हुई है और यह सोचना ही गलत है **कि** जरूरत पड़ने पर इस अभियान में जनता का सहयोग नहीं मिलेगा। लेकिन यह भी उतना ही बड़ा सच है कि इन संस्थाओं पर लोगों को भरोसा नहीं होगा, तो वे कभी आगे नहीं आएंगे। इस योजना में **प्रधानमंत्री** के व्यक्तिगत तौर पर रुचि लेने के बावजूद बात का आगे न बढ़ना गंभीर **चिंता** का विषय है। ऐसा मानना भी उचित नहीं होगा कि गंगा की सफाई एक असंभव काम है। गंगा की स्थिति आज भी उतनी बुरी नहीं है, जितनी ब्रिटेन में 100-150 साल पहले टेम्स नदी की थी या यूरोप में डैन्यूब नदी की हो चली थी। वहां तो नदी के किनारे खड़ा होना तक मुहाल था। मगर वहां की सरकारों ने धैर्यपूर्वक कार्य करके नदी को **पर्यटन** स्थल में बदल दिया। यह बात अलग है कि उसमें पर्याप्त धन, श्रम और समय के साथ समाज का सहयोग भी पूरा लगा। लिहाजा प्रश्न केवल नीयत का है। अगर नीयत साफ है और श्रम में कोताही नहीं हो, तो अपने यहां भी देर नहीं हुई है। यह तब और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है, जब सरकार कहती है कि संसाधनों की कोई कमी नहीं है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 17-07-17

दागी पर लगे आजीवन रोक

राजनीति का अपराधीकरण खासकर बीते दो **दशकों** से गंभीर चिंता का विषय रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने एक हालिया आदेश में आपराधिक मामलों में दोषी सिद्ध उम्मीदवारों पर आजीवन रोक लगाने को लेकर निर्वाचन आयोग से अपनी राय स्पष्ट करने को कहा है। शीर्ष अदालत ने सार्वजनिक हित की एक याचिका पर यह आदेश **दिया** है। कुछ महीने पहले ही आयोग ने याचिकाकर्ता की दलील से सहमति जताईथी। लेकिन याचिका की सुनवाईके दौरान आयोग के वकील ने भिन्न रुख अख्तियार किया। आयोग का यह अस्पष्ट विचार लगता है। आयोग के पूर्व रुख से भी यह मेल नहीं खाता। आयोग के प्रति शीर्ष अदालत की यह सख्ती अप्रिय है क्योंकि आम तौर पर आयोग का ट्रैक रिकॉर्ड पाक-साफ रहा है। सच तो यह है कि सुप्रीम कोर्ट आयोग का हिमायती रहा है। इतना कि मैंने हमेशा शीर्ष अदालत को आयोग का फरिश्ता सरीखा अभिभावक बताया। सो, जरूरी है कि आयोग इस मुद्दे पर अपनी स्थिति स्पष्ट करे जो अभी दुविधाग्रस्त दिखती है। मुझे कतई संदेह नहीं कि निर्वाचन आयोग राजनीति में आपराधीकरण को लेकर अपना स्पष्ट रुख व्यक्त करेगा। अलबत्ता, इस अप्रिय स्थिति का सकारात्मक पहलू यह है कि

राजनीति को आपराधिक प्रभाव से मुक्त कराने की जरूरत फिर चर्चा में है। इस मुद्दे के दो आयाम हैं : 1) दोष-सिद्ध राजनेताओं से कैसा व्यवहार हो; तथा 2) दोष-सिद्ध होने से पूर्व कैसा व्यवहार हो। कानून की शुरू से भावना रही है कि संसदीय पणाली को आपराधीकरण से संरक्षण मिले। निर्वाचन कानून (जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8) दो वर्ष या ज्यादा अवधि के लिए सजा पाए व्यक्ति को चुनाव लड़ने से अयोग्य घोषित करता है। लेकिन जिनके मामले की सुनवाईचल रही होती है, उन्हें चुनाव लड़ने की इजाजत होती है। यह स्थिति स्वीकार्य होती यदि सुनवाई और फैसला यथोचित समय में सुनाया जाता। सुप्रीम कोर्ट विधायिका की शुचिता को लेकर हमेशा चिंतित रहा है। 2002 में अदालत ने सभी उम्मीदवारों के लिए लाजिम कर दिया था कि अपने खिलाफचल रहे आपराधिक मामलों का ब्योरा देते हुए शपथ पत्र रिटर्निंग अफसर के समक्ष पेश करें। सुप्रीम कोर्ट के एक के बाद एक फैसलों से अदालत की इस मुद्दे पर चिंता का पता चलता है। नोटा संबंधी आदेश भी इसी मंशा से दिया गया कि दागदार छवि वालों को टिकट देने से पहले राजनीतिक पार्टियां सोचें। एडीआर के विश्लेषण के मुताबिक, मौजूदा लोक सभा के 187 सदस्यों (यानी 34.4 प्रतिशत) के खिलाफ आपराधिक मामले चल रहे हैं। इनमें से 133 के खिलाफ गंभीर आरोप हैं। यह संख्या 2009 के मुकाबले ज्यादा है, जब 162 सदस्य आपराधिक मामलों (जिनमें 76 गंभीर मामलों के आरोपी थे) का सामना कर रहे थे। 2004 में यह आंकड़ा 128 (गंभीर मामलों के आरोपितों की संख्या 58) था। तो क्या हो उपाय? तीन संभावित विकल्प हैं। पहला, दागदार लोगों को टिकट देने से राजनीतिक पार्टियां को मना कर देना चाहिए। दूसरा, कानून में संशोधन किया जाए ताकि ऐसे लोग चुनाव लड़ने से प्रतिबंधित हो जाएं; तथा तीसरा, फास्ट ट्रैक अदालतें दागदार छवि वाले जनप्रतिनिधियों के मामलों का जल्द निपटारा करें। लेकिन दागदार लोगों को टिकट देने से इनकार तो दूर सभी राजनीतिक पार्टियां तो जैसे होड़ लगाए रहती हैं कि कौन ज्यादा से ज्यादा अपराधियों को टिकट से नवाजेगी। वे मिलकर इस प्रस्ताव का विरोध कर रही हैं कि सुनवाईका फैसला आने तक चुनाव लड़ने से रोक रहनी चाहिए। यह कहते हुए कि परस्पर प्रतिद्वंद्वी झूठे मुकदमे ठोक कर एक दूसरे को चुनाव मैदान से बाहर करने का खेल खेल सकते हैं। उनकी यह शंका कुछ हद तक वैध लगती है। लेकिन निर्वाचन आयोग के इस प्रस्ताव में तीन उपाय हैं। पहला, सभी अपराधियों पर प्रतिबंध नहीं होगा। केवल हत्या, डाकाजनी, बलात्कार, अपहरण या नैतिकता भ्रष्टता जैसे जघण्य अपराधों के आरोपियों पर ही यह लागू होगा। दूसरा, मामला चुनाव से कम से कम एक साल पहले का हो; और तीसरा, अदालत द्वारा आरोप तय किए जाने चाहिए। इस प्रस्ताव की खिलाफत करने वालों का तर्क है कि देश का न्यायशास्त्र कहता है कि दोषी सिद्ध होने से पूर्व कोई भी व्यक्ति बेगुनाह होता है। तो फिर उन 2.7 लाख से ज्यादा लोगों के लिए क्या कहेंगे जो लंबित मामलों (इसलिए ''बेगुनाह' हैं) में जेल की सलाखों के पीछे हैं। स्वतंत्रता, आवागमन, व्यवसाय और सम्मानजनक जीवन के बुनियादी हक से महरूम हैं। क्या इससे समानता के बुनियादी अधिकार का हनन नहीं होता? अगर कानून की परिधि में रहते हुए लंबित मामलों में आरोपित के अधिकार स्थगित रहते हैं, तो चुनाव लड़ने के अधिकार को अस्थायी रूप से स्थगित किए जाने को लेकर चिल्ल-पों क्यों? राजनेता यह सवाल उठाते हैं कि ''किसी मंत्री के लंबी सुनवाईके उपरांत बेगुनाह साबित होने पर क्या होगा?' उसे तो उस रुतबे से महरूम रहना पड़ ही गया जिस पर विधिवत उसका हक बनता था। मेरा प्रतिप्रश्न है कि क्या होगा जब कोईविधायक एक दशक बाद बलात्कार का दोषी साबित हो? तर्क यह भी है कि लंबित मामले के बरक्स किसी के साथभेदभाव नहीं किया जा सकता। ऐसा है तो सीवीसी पीजे थॉमस को सुप्रीम कोर्ट ने मात्र इसलिए क्यों हटाया कि उनके खिलाफ एक मामला लंबित था? अदालत ने ''सांस्थानिक शुचिता' की बात कही थी। तो फिर विधायिका की शुचिता का सवाल नहीं है क्या। यह तो सीवीसी से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण संवैधानिक संस्था है। क्या फास्ट ट्रैक अदालतों का गठन ही गैर-कानूनी न होगा क्योंकि ये वर्षो से फैसलों के इंतजार कर रहे मामलों के इतर केवल राजनेताओं के मामलों पर ही गौर करेंगी? नहीं। फास्ट ट्रैकिंग आज सर्वस्वीकार्य कायदा बन चुकी है। विशेष सीबीआई अदालतें, उपभोक्ता अदालतें, आर्थिक अपराधों की विशेष अदालतें और हाल के समय में बलात्कार के मामलों के लिए वजूद में आई फास्ट-ट्रैक अदालतें यकीनन न्याय सुनिश्चित करने की विशेष श्रृंखला हैं। और किसी ने भी उन्हें भेदभावकारी करार नहीं दिया है।